नृसिंहचम्पू ॥

भाषा

जिस को

प्रयागनिवासी पण्डित रामप्रसाद तिवारी ने
सब के हितार्थ

विशेषकर पौराणिकों के उपकार के लिये

पण्डित केशव भट्ट कृत संस्कृत नृसिंहचम्पू की सहायता
और निज युक्ति उक्ति से

बनाया ।

इलाहाबाद
"इण्डियन, प्रेस" में मुद्रित होकर प्रकाशित हुई
सन् १८९६ ई०

प्रथम वार २५०} {प्रत्येक प्रति मूल्य ≡)

श्रीगणेशाय नमः ॥

नृसिंहचम्पू भाषा ।

चौपाई ।

तप के बल सब देव पुजावत ।
तप करि सिद्ध तुरत फल पावत ॥१॥
तप बल राज करत सब राजा ।
तपबल धनिक लहत धनसाजा ॥२॥
तप ते हीन दीन दुख भोगी ।
तप ते रहित होत तन रोगी ॥३॥
हिरनाकशिप कीन्ह तप भारी ।
जाते सकल देव नर हारी ॥ ४ ॥
जेहि कारण विधि वचन विचारी ।
भये विष्णु नरहरि तनधारी ॥५॥

श्लोक ।

विष्णू नाभि सरोज में विधि घुसे,
सूते हरी सिन्धु में ।
शंभू जी कैलाश बीच निवसे,
सर्पेश पाताल में ॥
जाको ठांउ मिला तहां सोइ बसा,
सब लोकपाला डरे ।
हिरनाकश्यप दैत्यराज तप सों,
संसार में स्वर्ग में ॥ ६ ॥
कीन्ही ऊरधबाहु दृष्टि दै दी,
आकाश में निश्चला ।
बाढ़ी दीर्घ जटा सुवर्ण रँग की,
मन को कियो वश्य में ॥
गाड़्यो पांव अँगुष्ट भूमितल में,
सो बायु भोजी बना ।

चमक्यो तेज महा हहा करि भजे,
सब देवता सेवता ॥७॥
ताके तेज प्रचण्ड की लपकसों,
सब स्वर्गबासी तचैं ।
काहू भांति बचैं सोई ढँग रचैं,
हाहूत हाहू मचैं ॥
ब्रह्मा के ढिग जाइ के दुख कहैं,
सुरलोक रक्षा चहैं ।
क्या बाबा रचना करो नित नई,
हम को विपत्ती भई ॥८॥
जैसो तप हिरनाकशिप करतु है,
कीन्हे न काहू कभी ।
ना करिहै जेहि आंच ते सरग के,
हम सब जले जात हैं ॥
पोथी वेद पुरान वर्णित क्रिया,
औ धर्म को बीज हू ।

जाता है चलिके उपाय करिये,
जो बन पड़ै आप से ॥९॥

दोहा ।

इमिविधिसुरगण टेरसुनि, सँगलैऋषयसमाज ।
गये तहां जहँ तप करत, अद्भुत दानवराज ॥१०॥

चौपाई ।

जासु विपुल तप नपत न नापे ।
घासबांस बिमउर तन ढापे ॥११॥
जिमि रविको घन पटलछिपाता ।
तिमिताको नहि रूप दिखाता ॥१२॥
मानो अगिन तेज उसकाया ।
सोअतिदुलख गगनमें छाया ॥१३॥
बोले विहसि हंस असवारा ।
उठहु पुत्र तप सिद्ध तुम्हारा ॥१४
मैं प्रसन्न वर मांगहु जोई ।
देइहौं हे कश्यप सुत सोई ॥१५॥

भुजङ्गप्रयात छन्द ।

कहै दैत्यराजा सुनो सर्व आजा ।
सधे सर्व काजा लहे सर्व साजा ॥
तिहारे पदों पद्म को जो विलोका ।
जिते सर्व लोका गयेसर्व शोका ॥१६॥
जहांलो रची सृष्टिभारी तुम्हारी ।
हमारो न कोई सकै प्राण मारी ॥
निशामें न दिनमें कभीप्राणछूटे ।
नदेवानरा न पशू आइ जूटे ॥१७॥
लगे ना कभीअस्त्र शस्त्रा चलाये ।
यही मांग दीजे कृपा दृष्टि लाये ॥
नहीं बाहरे भीतरे ना अकाशा ।
मरूंनाक्षितीमेंयहीमोरआशा ॥१८॥

द्रुतबिलम्बित छन्द ।

फिरि बिरंचि सोई बर दे गयो ।

असुर नायक हर्षित ह्वै गयो ॥
सुध करी जबहीं लघु भ्रात की ।
करन लाग उपद्रव पातकी ॥१९॥
बयर कीन्ह जगत्रय नाथ सों ।
जिन हत्यो तेहि सूकर गात सों ॥
नगर गांव पुरी ब्रज बाटिका ।
सुथल खेत सुआश्रम हाटिका ॥२०॥
जहँ बसै नर ताहि जला दिये ।
विविध देश नरेश भगा दिये ॥
सबहि जीति चढ्यो सुरनाथपै ।
मुकुट मानिक सोहत माथपै ॥२१॥
लरि थके मिलि के गणदेवता ।
सब भगे न लगे कतहूं पता ॥
तब गही हरि की शरनावली ।
विविध भांति करैं विनयावली ॥२२॥

कबित्त ।

शेष घबरात धरा धारत न बनै भूमि-
कांपत समस्त महि स्वर्ग अकुलात है ।
लोक बैकुंठ हू में कुंठित भये हैं सुख-
दुख को दशाही सारे भुवन दिखात है ॥
आज दिन बीतगये कल को न जानीजाय-
बढत बिकलाई औ बिपत्ति अधिकात है ॥
अबतो अनाथन के नाथ एक श्रीनाथ-
शरण तिहारो अवलम्ब दरसात है ॥ २३ ॥

सवैया ।

यहि भांति करी सुरवृन्द सबै
हरि की बिनती फलपुष्प चढ़ाई ।
भयनाशक बानी कढ़ी नभसें
कहि आगम भेद प्रतीति बढ़ाई ॥
हम जानी सभी हिरनाकुश की
करनी दुख देत गरीबन को ।
अब ताको विनाश करैंगे सही
सब धीरज धारि रुको मनको ॥२४॥

श्लोक ।

जब देवता वेद द्विजातियों की,
बदी करे दुर्मति को बढ़ावे ।
न धर्म जाने नहिँ ईश मानै,
तब पाप को पाप नदी ढहावे ॥२५॥

भुजङ्गप्रयात छन्द ।

सुनो देवता होयगो तासु बेटा ।
दयाभक्ति विज्ञान शांती लपेटा ॥
जभी भक्त प्रहलाद को दुःखदेहै ।
तभी मैं हनूंगो महीभार जैहै ॥२६॥
कछू कालमें मेदुरा नाम रानी ।
जनी पुत्र संसारमें धर्म खानी ॥
शरच्चन्द्रसी जामुखाभा सुहावे ।
पदुमसीबड़ीआंखियांजक्तभावे२७॥

दोहा ।

जन्मत ही प्रहलाद के, भये जगत अहलाद ।
सबमुनिगणमिलिदेतहैं, ता पितु को धनिबाद २८

श्लोक ।

हे राजन् तुम धन्य धन्य धरती,
धन्या सुधन सम्पदा ।
धन रानी कुल धन्य दैत्यपति को,
धन धन तेरे पूरुखे ॥
धन धन धाम सुधा समुद्र सम है,
जाते कढ़ो चन्द्रमा ।
साक्षात् मंगल मूर्ति भाग्य निधि है,
संसारहू धन्य है ॥ २९ ॥

इति प्रथम अंक ॥

——:०:——

अब परमरूप निधान कमल लोचनराजकुमार प्रह्लाद को पिताने राजनीति पढ़ानेके निमित्त परमपूज्य गुरुवर शुक्राचार्य्य जी के स्थान पर भेजा और बड़े नीतिविद्या निधान गुरु पुत्र ने कुशाग्रबुद्धि राज-कुमार को मंगलाचार पूर्वक विद्यारम्भ कराया—पाठक जी ने तो प्रथम इतनाहीं बतलाया कि कहो कुअर जी—"ॐ नमः सिद्धम्" प्रह्लाद जी इसी मंत्र पर अपनी अनुभव शक्ति प्रगट कर बोले—

नमः सिद्धं जाते सकल रिधि सिद्धी सधत हैं।
नमः सिद्धं जाको पद कमल शंभू भजत हैं।
नमः सिद्धं जाके गुणगण न ब्रह्मा कहि सकें।
नमः सिद्धा सोई हरिभगतिहो मंगल करी ॥

राजकुमारके मुखते भगवान् विष्णु की महिमा और हरि भक्ति की चर्चा सुन कर गुरू जी को वेपरिमान क्रोध चढ़ आया और अत्यन्त धमका के कहा कि यदि तू ऐसी बात मुखते निकालेगा तो दंड पावेगा तू श्री मन्महाराजाधिराज का पुत्र है तुझे राजधर्म और नीति विद्या सीखनी चाहिये कदाचित् किसी कठमलियेने तुझे विगाड़ दिया है जो तू बकता है यह भिखमंगी उपासना और डिंभी सम्प्रदाय है यह मत हमारे शत्रु पक्षी देवताओं का है कि जिस में कुछ भी सार वस्तु नहीं है न राजसुख न धन सम्पदा का आनन्द आपस में बात की कटाकट किया करते हैं न्यायवेदान्त आदि षड् दर्शनशास्त्र आपस मे विरोधी हो के लड़ते हैं इन शास्त्रों में मोह की बातें भरी हैं अनेक प्रकार के यज्ञव्रत दानादि क्रिया में कितना क्लेश उठाना पड़ता है प्रत्यक्ष में कोई सुख और परमार्थ नहीं है केवल परलोक और दूसरे जन्म की गीतैं गाते हैं कि जिसे न किसी ने आंखो से देखा न प्रमाणिक साक्ष्य के द्वारा सिद्ध किया हमारे

दैत्यपक्ष की वह प्रत्यक्ष फल दायिनी विद्या है कि जिस की सहायता से सब देश विदेश के नरेशों को जीत अपने वश में कर लें सब से टहल करावें नाना प्रकार का मन माना कर या (टेक्स) उगाहें जो कोई अपने से प्रतिकूल हो आज्ञा न माने उसे कान पकड़ के घर और राज से निकाल देवें और प्रवलों को युद्धविद्या के द्वारा नष्ट और निर्मूल कर देवें देखो अपने पिता के प्रभाव को कि जिन के भय से सब देवता छुपते फिरते हैं जो किसी शत्रुपक्षी ने तुम्हें गप्प की बातें सिखादी हैं उन्हें तुम भुलादो या झूठी समझो और विष्णु देवता का नाम तो कभी स्वप्नमें भी मुख पर मत लाना ॥

प्रह्लाद—बड़े शोच की बात है कि जिस भृगु बाबा के चरण चिन्ह को भगवान् विष्णु अपने हृदय में धारण किये हुए हैं और ब्राह्मण मात्र को अपना इष्ट मानते हैं। सो उन्ही भृगु के पौत्र होके धनादि की इच्छा और सुख के लालच से आप असुरवर्गी बनगये और यह सिद्धान्त मानने लगे "हरेर्नामनगृह्णियान्नास्पृशेत्तुलशीदलम्" और मेरातो यही इष्टमन्त्र और नित्यपाठ है—

हरे मुरारे मधुकैटभारे-
गोविन्द गोपाल मुकुन्द सौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो-
निराश्रयस्ते शरणं प्रपद्ये ॥३१॥

आप भृगुवंशावतंस और बड़े विद्वान् होकर महर्षिरचित शास्त्रों को नहीं मानते वेदोक्त धर्मके विपरीत उपदेश देते हो और अग्निहोत्रादि कर्म को नहीं मानते यह नास्तिकों के संसर्ग दोष का प्रभाव है—

गुरूपुत्र—यह अद्भुत और अनोखी बात निकली कि मेरे सिखाये हुए शास्त्र का अभ्यास और मानना तो दूर रहा उलटा मेरे पक्षमात्र का खंडन करते हो तुम असुरकुल में कलंकरूप जन्मे समझ रक्खो कि यह बातें महाराजा के कान तक पहुंचें गी तो तुम्हारा प्राण बचना कठिन हो जायगा—

सवैया।

प्रह्लाद—प्राण तो जाय तो जाय चलो
कछु चिन्ता नहीं मन होत हमारे।
आनदकन्द मुकुन्द के ध्यान ते
मेंरा सुचित्त टरै नहिं टारे॥
जाते बुझै भवताप घनी
नव नीरद की छवि छांह सहारे।
क्या गुरु पुत्र डराओ हमैं हरि
भक्ति की शक्ति का रूप बिसारे॥३२॥

इसी अवसर में एक देवता जी बंदिगृहसे दुअर्थी बात बोलउठे॥

सोरठ।

हे नृपकुल अवतंस सुन्दर चतुर उदार हो॥
नहिं जन्मे तेहि वंस जहँ कीर्तन गोविन्दको॥३३॥

प्र०—इस अनोखे चित्त की प्रवृत्ति के लिये कुल की परम्परा की मुख्यता नहीं है किन्तु इसमें परमेश्वर की कृपाका निबंध मुख्य है देखो—

श्लोक ।

चुल्लू में भरि वृद्ध कुंभज ऋषी,
सब सिन्धुको पी गये ।
रोकी विन्ध्य पहाड़ बाढ़ विपुला,
औंधा कियो भूमि में ॥
सो घट को गुण ना कुम्हार महिमा,
जानें सभी लोक में ।
श्री विश्वम्भर की विचित्र महिमा,
चाहे जिसे शक्तिदे ॥ ३४ ॥

इस अखंड ब्रह्मांडमंडल में न जानें कितने प्रकार के जीवधारी हैं जो अपने खाने, पीने, उठने, बैठने, सोने, जागने प्रभृति व्यवहार ही में आयुर्बल को समाप्त करते हैं क्या ऐसे जीवधारी संसार में नहीं हैं जो पूर्व संचित कर्म भोग मात्र के लिये उत्पन्न होकर रात दिन दौड़ २ उसी के भुक्तान में मगन और सुखी रहते हैं और पच २ मरते हैं कभी भूले भटके अटके भी किसी परोपकारी कार्य में छुआई तक नहीं देते । ऐसे प्राणी न जानें कितने होते होंगे जो बारम्बार संसार की दुर्दशा भोग कर फिर दूनी चौगुनी अठगुनी दुर्गति भोगने का उपाय कर रहे हैं परन्तु वे सुचरित्र प्राणी जो बारम्बार ईश्वर को प्रसन्न कर अपने अति सुन्दर गुणगणों के द्वारा सत्कीर्ति साधनोपयोगी देह धारण कर तीनों लोक को भूषित

करते हुए सदैव विद्यमान रहतेहैं परन्तु इस समय जो छल कपट से भरे हुए मायावी प्राणी विद्यमान हैं सो उन सब के बिचित्र कर्मानुरूप गुण कोई भी स्वाभाविक है यह कोई भी नहीं कह सक्ता—

गुरूपुत्र—हम सब महाराजके दर्शनार्थ जानेवाले हैं उन के सामने तुम्हारे इस अनुचित गान और विपरीताचरण को कह सुनावेंगे—(इतना कह कर चले) शिष्य भी पीछे २ चुप चाप चला कुछ दूर जाकर उच्चस्वर से यह बोल उठा—

दीन दयाकर सर्व गुणाकर,
हे प्रभु मोर सुनो विनयं ।
हौ जगपालक खलदल घालक,
निजजन लालक नीतिमयं ॥
दानव वृन्द बड़े मति मन्द,
रचैं बहु फन्द करैं अनयं ।
वेगि दबाय हटाय तिन्हैं,
अनरीति नशाय करो अभयं ॥३५॥

गुरूपुत्र—(मन ही मन में) यह चेला नहीं है बड़ा ही दुष्ट और ज्ञानाभिमान से भरा है क्या करूं—ऐसे बडे भारी दरबार में कि जहां देशदेश के नरेश हाथ जोड़े खडे हैं उचित यह है कि प्रथम महारानी जी से कहूं—

गुरुपुत्र (रानी से)

दोहा ।

नहिँ मानत मेरो वचन, यह तव राजकुमार ।
असुर वंश दूषित करम, निज शिर धरत पुकार॥

माता (प्रह्लाद से)

तजहु पुत्र तन चपलता, चलहु वंश अनुसार ।
असुर विमल कुल कमल में, तुम लीन्हे अवतार ॥

प्रह्लाद (माता से)

अनरस झूठी बात को, तू क्यों भाषत मात ।
असुरबंश पावक भरो, मोको प्रकट दिखात ॥
जाकी शाकानीति मय, गुणगण विमल विभात ।
मैं ताको सुमिरत रहत, वृथा न कोउ क्षण जात॥

माता

असुर नाथ के कान लों, मत यह वानो जाय ।
नहिँ भूपति सहि सकेगो, अनरथ बहुअधिकाय॥

प्रह्लाद

चाहे नृप बहुरिसि करे, किमि त्यागहुं निजराम।
नहिंछोड़तकोउ मशकभय, जगतबीचनिजधाम॥

इसी समयान्तर में सभाके मध्य महाराजा का समागम हुआ पुत्र को देख प्रेमातिरेक से निज अंग में चिपटा लिया और कहा कि हे प्राणप्यारे मेरे हृदय कुमुद का प्रफुल्लित करने वाला यही समय चन्द्र है कि जो तुमने गुरू जी से सीखा है उसे अपनी सुधा-मयी बालवानी से कह सुनाओ—

प्रह्लाद

कवित्त।

असुरनके बंश को निरादर पसन्द मोको,
अपनो विचित्र चित्त विमल बनाना है।
श्यामधामशरण गहिलीलामयी नौकापर,
चढ़िके अपार भवसिन्धु पार जाना है॥
कीर्तन श्रवण आदि नवधा हरिभक्तीको,
तन में संभालि रंग पक्का चढ़ाना है।
जनमकृतारथ अरु आतमको स्वारथहो,
कुल के कुकर्मियों का दुर्यश मिटानाहै ४१

दोहा।

नहिंरुचि चरण मुकुन्दमें, ते मतिमन्द गवांर।
चर्वित को चर्व्वण करें, वृथा धरैं गृह भार॥४२॥

पिता—रे लड़के किस धूर्त ने तुझे बहकाया है बिशेष कर इसी पंडिताभिमानी गुरू ने तेरा इस में कुछ दोष नहीं है।

गुरुपुत्र—(डरताहुआ)

दोहा ।

बिविध भांति समझाइ के, मैं थक गयो सुरारि ।
यह शिशु कछु मानत नहीं, सांचहु शपथ तुम्हारि॥

इतना कहने पर जब महाराजाधिराज का प्रबल कोप शान्त होते हुए न देखा तो गुरू अपने शिष्य (प्रहलाद) से बोला :—

दोहा ।

क्यों भययुत ताकत मुझे, सत्य सत्य जो होय ।
तुम्हहि शपथ है बाप की, कहहु नृपति सां सोय ॥

प्रह्लाद (मन में) अच्छा है यह भगवत् द्रोही गुरू डाटा जाय ॥

गुरुपुत्र (मन में) हाय मैं अभागा मारा गया इस लड़के की भक्ति ईश्वर में दृढ़ हो गई सो उस के बिपरीताचरण का फल मुझे भोगना पड़ता है अब मैं क्या करूं यह नटखट छोकरा कुछ भी नहीं सनकता अब मैं इसे ईश्वर की सौगंद देकर पूंछूं—

दोहा ।

जामे तेरो प्रेम दृढ़, ताकी है सौगन्द ।
सत्य सत्य कहि देइ तू, जो कुछ मन्द अमन्द ॥

प्र० (पिता से)

दोहा ।

सब विद्या निधि देवता, जो हृदि करे निवास ।
सो मम ईश महान् गुरु, सकल साक्षि गुण रास॥

पिता— सोरठा ।

अवलम्बन पर धर्म्म, रे दुर्मति सुत तू करत ।
कुल दूषण तव कर्म्म, याको फल पैहै अवशि ॥

श्लोक ।

पायो जन्म महान् दैत्य कुल में,
जाते डरैं देवता ।
डोलै भूमि कँपै अकाश थर थर,
दासी बनी सिद्धता ॥
तेरो दिव्य शरीर सम्पति भरी,
सब भूप आज्ञा करी ।
हा तेरी मति दुष्ट तुच्छ बिगरी,
जो बैर पक्षादरी ॥ ४३ ॥

प्रहलाद— सवैया ।

जो न करै हरि हेत प्रणाम,
न ता बपु को तुम जीवत जानो ।
सम्पति हू नहिं ईश समर्पित,
सो फिर होत विपत्ति समानो ॥

नाहीं सुनै गुन ग्राम गुपाल को,
सो दोनों कान अही बिल मानो ।
जो न रटै गरुड़ध्वज नाम,
सोई रसना विष वेलि बखानो ॥४४॥

दोहा ।

श्री भगवत गुण गण सुने, द्रवे न मन हठ जासु ।
प्राण विघातक वज्र जनु, रच्यो वीच तन तासु ॥

श्लोक ।

सो पूजो हरि पाद पद्म नित नित,
मानो सदा विप्र को ।
काटो शत्रु शिरांसि युद्ध विधि सों,
पालो प्रजा नीति सों ॥
फैलाओ निज कीर्ति उज्ज्वल तरा,
संसार मे स्वर्ग में ।
सन्मन्त्री जन संग भोगहु पिता,
निःकण्टका भूमिको ॥ ४६ ॥

इति द्वितीय अंक ।

——:०:——

राजा (कुपित होकर) सुन अज्ञानी लड़के-आज अपने प्रबल तपस्स्वरूप तरु में अविच्छिन्न शूरता उदारता गम्भीरतादि अनेक गुण गण लसित लम्बायमान शाखाओं ने दसों दिसाओं को ढांप ली हैं जिनके ललित ललाम पल्लवों की सत्कीर्ति कलियों में सुयश स्वरूप पुष्प विकसित होकर गगनचारी चन्द्रमा के विकाश को मन्द करते हुए तीनों भुवन को धवलित कर दिये हैं फिर मेरे प्रचण्ड चाप मार्तण्ड के प्रखर तेज से शत्रुगणों के नेत्र में तिमिर छागया है समस्त नर किन्नर सुर असुराधिराजों के किरीट जड़ित मणियों की ज्योति प्रतिविम्ब से मेरे दशों चरण नख सुशोभित होते हैं जब मुझ त्रिभुवनेश्वर से ऊपर कोई भी प्रभुता पात्र नहीं है तो बतला मैं किस की आराधना करूं और मैं जैसा हूं सो सुन—

श्लोक

मेरे सो पाइ शंका बड़ बड़ पृथिवी,
पाल रंका वने हैं ।
बांधे छोटी लंगोटी बन बन विचरैं,
राख धूली लपेटे ॥
इन्द्राद्या लोकपाला सकल भय भरे,
देत माथा लचाये ।
बतलाओ भूमिगामी अरु नभचर में,
को महान् जाहि मानूं ॥८७॥

प्रहलाद— श्लोक ।

सोहैं मंगल खानि मानिक मयी,
सृष्टी जहांते कढ़ै ।
वाही ते सब जीव जन्तु उपजैं,
जीवें जहां के बले ।
जैसे सैन्धव सिन्धु में पड़ि गलै,
वैसे सभी लीन हों ।
जामें सो कमलापती सब पती,
क्यों नाहिं मानो पिता ॥४८॥

राजा (कोपसे असुरों की ओर देखकर)

चौपाई ।

सब दानव गण गहि हँथियारा ।
या शिशु पर हठि करहु प्रहारा ॥
याके जीवत असुर भलाई ।
नहिँ ह्वैहै मन की दृढ़ ताई ॥५०॥
इमि नृप वचन सुनत निशिचारी ।

लै सब अस्त्र शस्त्र अति भारी ॥५१॥
गर्जहिं तर्जहिं शिशुहि डरावें ।
निज विकराल भाव दिखरावें ॥५२॥

प्रहलाद—(सब असुरों से उसी अवसर में)

दोहा ।

मनसा वाचा कर्मणा, यदि हरि में दृढ़ प्रेम ।
तो सब शस्त्र परम्परा, करिहैं ममतन छेम ॥५३॥
यदि करुणा भगवान की, सुनहुं असुर संघात ।
अस्त्र शस्त्र तुम्हरो वृथा, ह्वै हैं कुसुम प्रघात ॥५४॥

श्लोक ।

मुकुन्द पादाम्बुज छेम सानो,
आनन्द औ मंगल मूल जानो ।
जो चित्त में आदर युक्त धारै,
न पांव टारै नहिं जंगहारै ॥५५॥
सोई अनाथ शरणागत पिंजरा है ।
वात्सल्य भाव करुणा रस ते भरा है ॥

वा में वसेर यदि पावत्त भक्ति पक्षी ।
ताको न दुःख पहुंचाइ सकै विपक्षी ॥५६॥

राजा—(अति कुपित होकर सर्पों से बोला)

चौपाई ।

शासन सुनहुं सर्व समुदाई ।
डसहु याहि विषदन्त लगाई ॥
पथ्य वचन मम गहत न बाला ।
आनिबसी हिय कुमति कराला ॥५८॥

असुर राजकी आज्ञा मान तक्षकादि बडे २ भोगी विषधारी सर्प गण शिर से पांव तक लिपट कर यथाशक्ति काटने लगे परन्तु परम कारुणिक त्रिभुनेश्वर महाराजाधिराज करुणा वरुणालय के प्रसाद ते समस्त विषैले सर्पों की गति कुण्ठित हो गई दान्तों की चोखाई जाती रही विषके स्थान अमृतरस आगया कांपते हुए सांपों ने कहा कि महाराज हमारी नस नस टूट गई मणि फूट गई फण लटक पडे, तो प्रभु की आज्ञाका पालन हम लोग क्योंकर कर सक्ते हैं—

(इसी अवसर मे आकाशवाणी भई)

चौपाई ।

गरल सुधा अरि करै मिताई ।
गो पद सिन्धु अनल सितलाई ॥

गरुत्र सुमेरु रेणु सम ताही ।
राम कृपा करि चितवहिँ जाही ॥

राजा—(दिग्गजों से)

श्लोक ।

यह शिशू जगती तल भार है ।
करहु मर्दन काज हमार है ॥
यश तुम्हार बढ़ै अति दिग्गजा ।
गगन मध्य उड़ै असुरी धजा ॥

दिग्गज—(कुण्ठित होकर)

सवैया ।

जाके चहूंदिशि झुण्ड के झुण्ड,
भयङ्कर केहरि मुख्य दिखाहीं ।
आंखैं मनों लपकैं लव आग सी,
चोखे रदों की खरी परछाहीं ॥
प्राण बचैं तो यही बड़ लाभ,
सुनो महराज कहां हम जाहीं ।
राजकुमार को दैव अधार,
चहै महि भार हरै छन माहीं ॥६२॥

राजा—(अग्नि से)

दोहा ।

यदि पावक समरत्थ हो, दहहु दुष्ट कर गात ।
क्या यश हो वारत फिरत, सड़ी घास अरु पात ॥

अग्नि भगवान बड़े, धूमधाम के साथ भस्म करने पर सन्नद्ध हुए परन्तु शीतलातिशीतल सर्वशक्ति सम्पन्न सारंगपाणि की कृपावारि से अग्नि की समस्त औष्णिक शक्ति भगवती गंगा जी के लहरों के समान शीतल हो गई अग्नि देवता शक्ति कुण्ठित हो कर बोले—

श्लोक ।

जो कोटि सूर ससि तुल्य प्रकाश राशी,
सो देवता तव कुमार सुचित्त वासी ।
वाके समीप प्रभु आज किसे जलाऊं,
सो सर्व शक्ति महिमा केहि गेह पाऊं ॥६४॥

प्र०—(पिता से)

द्रुतविलम्बित छन्द ।

विन निदेश पिता जगदीश के,
नहिं कछू यह आग जला सके ।

जठर पावक देख शरीर को,
दहत नाहिं करै निज नोकरी ॥६५॥
सकल ताप निवारक राम हैं,
जपत ही भय नाशत भक्त को ।
लखहु तात यहीं मम गात पै,
भयहु पावक शीतल नीर सों॥६६॥

राजा—(रसोईदारों से)

चौपाई ।

ऐसो विष युत देहु अहारा ।
खातहि मरे छुटे दुखसारा ॥

जब हालाहल मिश्रित अहार के खा जाने पर अमृत भोजन के समान भोक्ता की रुचि बढ़ी तो सूदों ने यह प्रार्थना की सुनो महाराज आप का राजकुमार अत्यन्त कराल प्राण हारक विष मिश्रित अहार को खाकर अमृत से भी अधिक रोचक कह कर बार २ मांगता और प्रीति सहित खाता है तो हम सब किंकर क्या कर सकते हैं ।

राजा—(विस्मित होकर प्रहलाद से)

दोहा ।

जो जो किंकर करत हैं, यत्न विफल ह्वै जात ।
तेरा यह प्राकृतिकगुण, वा कछु कपट विभात॥

प्रह्लाद—(पिता से)

श्लोक ।

लक्ष्मीमाई हमारी करुण रस भरी,
दुःख दारिद्र हर्ती ।
लीला धारे बिशाला सब कछु करे,
जो चहे सो बनावे ॥
जाको स्वामी अमी में गरल रस भरै,
औ विषों को सुधारै ।
ताको तुम भूलते हो असुर कुलपते,
ज्ञान ते चूकते हो ॥६९॥

राजा (दैत्यों से)

दोहा ।

पटकि देहु गिरि शिखर ते, चूर चूर ह्वै जाइ ।
दोष सहित निज अंग को, काटत हैं बुध धाइ॥

प्र०—पहाड़ पर चढ़ा हुआ पृथिवी से कहता है—

भुजंगप्रयात छन्द ।

शिरों पै मही तोहि हैं ईश धारे,
बहूबार सो पाप बोझा उतारे ।

गुनो को न भूलो बनो प्राणदाता,

हरी दास को गोद में लेहु माता ॥७१॥

दोहा ।

शैल शृंग ते गिरतही, धरती लीन्ह उठाय ।

जिमि माता निज वाल के, लेरतगोद विठाय॥

चौपाई ।

शंबर ते बोल्यो तब राजा ।

करत उपाय होत नहि काजा ॥७३॥

यह बालक कुल का अंगारा ।

कवनिहुं भांति होत नहि छारा ॥७४॥

तुम माया रचि याहि नसावहु ।

असुरवंश को गांव बसावहु ॥७५॥

दोहा ।

सो शम्बर माया रची, तत्क्षण सहस्र प्रकार ।

घर बन सब जलने लगे, चहुं दिग हाहाकार ॥

(इसी अवसर में प्रहलाद)

श्लोक ।

क्या डूबे सब वेद सिन्धु जल में,
क्या सत्क्रिया उठ गई ।
क्या भाई ऋषि वंश आशिष रुकी,
क्या देवता मर मिटे ।
क्या सोये भगवान या सपन है,
माया हरी की खरी ।
जो हो सो कमलापती करि सकैं,
मैं ना कछू जानता ॥७७॥

(फिर भगवान से स्तुति)

छन्द ।

जय जय प्रभु मदनाधिक सुन्दर ।
देव गदाधर जय जय मुर हर ॥
भूसुर पालक दीन दयाकर ।
दनुज विदारण बोध सुधाकर ॥

दुरित निवारण कुण्डल मंडित ।
दिव्य विलोचन संगर पण्डित ॥
बद्ध विमोचन सज्जन रंजन ।
नत जन लालन दुर्जन भंजन ॥८१॥
वेद विशारद मानव मानद ।
निर्मल मानस मोचन खल मद ॥
भक्त परायण भानु विलोचन ।
करुणासिन्धो दीन विमोचन ॥८३॥
यह खल कृत माया मद तोरहु ।
सकल कपट लवणाम्बुधि बोरहु॥८४॥
जगत भिखारी तुम प्रभु दाता ।
निखिल भुवन गुन अवगुन ज्ञाता॥८५॥
ऋद्धि सिद्धि के सिर्जनहारे ।
अमित पतित मंडल तुम तारे ॥८६॥
इमि मनसमुझि शरण मे आया ।

वेद पुराण विविध गुन गाया ॥८७॥
हे माधव निज चक्र बुलाओ ।
आसुर माया वृन्द भगाओ ॥८८॥
यदि न करहु किंकर हित काजा ।
किमि बनिहौ त्रिभुवन सिरताजा॥८९॥

राजा (वायु से)

श्लोक ।

सुनो तुम महावीर उञ्चास बाता,
तुम्हारे नहीं तुल्य कोऊ दिखाता ।
चहो नेकनामी शिशू को सुखाओ,
हमारे लिये चासनी सी दिखाओ ॥९०॥

सब ४९ वायु राजकुमार के निकट भगवान को देख कर बोले ।

शिखरणीछन्द ।

बनो जापै छाता सहस फणधारी अहिपती,
महाराजा कोई पुरुष इक ताके ढिग बसे ।
वहां कैसे जावें डगर नहिं पावें घुसन की,
बताओ सोधंधा सकति भरिजाको करिसकैं॥

राजा (सब दैत्यों से)

दोहा ।

नागपास ते बांध कर, सब मिलि लेहु उठाय ।
बोरहु याहि समुद्र में, तब बिपत्ति मिटि जाय ॥

जब दैत्यराज की आज्ञानुसार असुरों ने नागपास ते बांध कर समुद्र में फेंक दिया उस समय प्रहलाद ने समुद्र से यह कहा :—

भुजंगप्रयात छन्द ।

तुम्हैं सोखि लीन्हे ऋषी कुंभ बेटा,
प्रभू ने पदों से विपत्ती समेटा ।
कछू शुद्धि हो तो हमैं तुम बचाओ,
हरिदास नाते गुनों को सचाओ ॥
हरी की कृपा ते करै अम्बु खेला,
भई नाव सी दुस्तरा सिन्धु बेला ।
सुरारी तबो देह पै शैल झोंके,
मुरारी प्रभू सर्व आघात रोके ॥९३॥

इन सब अनर्थों से निवृत्त हो कर राजकुमार भगवान् से कहता है—

भुजंगप्रयात छन्द ।

महासिन्धु में आपही थाह दीन्हे,
घनी आग को बर्फ़ सो ठंढ कीन्हे ।
जभी शैलते दुर्जनों ने ढकेला,
लई गोद में आप ज्यों गेंद खेला ॥
मुरे अस्त्र शस्त्रा नहीं देह लागे,
थके सांप बिच्छू करीवृन्द भागे ।
करी ना कभी नाथ की भक्ति चोखी,
प्रभू बानि है दीन रक्षा अनोखी ९५

इति तृतीय अङ्क ॥

——:o:——

राजा (प्रहलाद की जीत और भलाई न सहकर)

दोहा ।

मेरे डर ते तव हरी, गिरि पर गयो लुकाय ।
क्यों नहिं आवत है निकट, संग लरों मनलाय ॥

प्रहलाद— **दोहा ।**

जबलों प्रभु प्रगटत नहीं, तबलों बकहु अघाय।
गज गर्ज़नि गलि जायगी, कंठी रव रव पाय॥

राजा—(प्रहलाद से)

कुंडलिया ।

चाहे वंध्या सुत करे पौत्र व्याह को याग।
क्लीव पुत्रिका संग में नभ में लागे बाग॥
नभ में लागे बाग पुरुष गूंगा बरु गावै।
अन्ध लखै सब खेल चहै पंगू मग धावै॥
बधिर सुनै सब तानहू तो अचरज नहिं कोय।
मेरे सम्मुख युद्ध लगि तव हरि प्रगट न होय॥

प्र०—(अति क्रुद्ध हो कर राजा से) हे असुराधिराज आप ने मानो रोम रोमसे प्रचण्ड हालाहल विष पान किया है कि जिस से छुपे हुये पन्नग समान त्रिभुवनेश्वर प्रभुवर को कुपित किया चाहते हो जो अघटित को सुघटित और सुघटित को अघटित कर सक्ता है यदि वह प्रकुपित हो कर समस्त ब्रह्माण्ड मंडल को भस्म करना चाहे तो कौन रोक सक्ता है उस अवस्था में केवल तुम्हारा संहार जो मसा के समान है कुछ वस्तु नहीं किन्तु प्राणिमात्र नहीं रह सक्ता जैसे मतवाले वानर के गाल में गूलर के मसाओं की गति होती है यही दशा जगदीश्वर समस्त ब्रह्मांड मंडलों की कर सक्ता है जैसे वन में डाढ़ा लगने पर लकड़ी के भीतर वाले घुनों का

संहार होता है। अथवा जिस प्रकार बडे. तूफान से डावांडोल होते हुए जहाज पर अग्नि के कोप से यात्रियों का कहीं ठिकाना नहीं मिल सक्ता अथवा विचित्र कलाधारी भगवान् समस्त जगत को बचाकर केवल आपही का संहार कर सक्ता है और क्या होगा यह भगवानही जानता है—

राजा—(क्रोध से)।

कुंडलिया

दिन में निशि में गगन में बाहर भीतर जान।
विधिकृत नरते पशुनते नहि ममसृत्यु विधान।
नहि ममसृत्यु विधान वचन ब्रह्मा को सांचा।
शिशु पापी मतिहीन करन चाहत है कांचा॥
यदि वाके अनुकूल ही मेरो प्राण नशाय।
तुरत पितामहदेव को सब प्रमाण मिटिजाय ९९

प्र०—श्री भगवन वह उपाय करेंगे कि तुम भी नष्ट हो जाओ और ब्रह्मा के वचन का प्रमाण भी बना रहे वह बात स्पष्ट है और ऐसा ही होगा—

राजा— **दोहा।**

यदि तव प्रभु समरत्थ है, ममढिग आवे सोय।
सर्वव्यापी तब सही, प्रगट खम्भते होय॥१००॥

प्रहलाद— दोहा ।

यदि मेरी दृढभक्ति है, अरु श्रुति सत्य प्रमान ।
तो देखिहो तुम खम्भमें, जो प्रभुशक्ति निधान १०१

राजा— चौपाई ।

यह तो खम्भ निरस जड़ होई ।
ता विच तुच्छ बसत क्रिमि कोई ॥
ऐसे को जो निज प्रभु जाना ।
धनि धनि देवभाग पहचाना १०३

प्रहलाद— चौपाई ।

जाकी विपुल शक्ति नहिं अन्ता ।
गहिपद शरण भजहु भगवन्ता ॥
न तो खंभ यह मृत्यु समाना ।
प्रगट होन चाहत हम जाना १०५

कबित्व ।

खैर के अंगार के समान धक्क धक्क जाके,
बरें सब अंग सो भुअंग कोप धारे हैं ।

धौंके लोह गोलेसे अरुण नयन दोनों,
कर में कराल करबालहू संभारे हैं।
लोके अकुलावत कंपावत ही दिग्गज को,
गिरि को हलाय सिन्धु नीर को उछारे हैं।
सन्तन हँसावत धसावत हैं पापिन को,
खम्भ फारिअद्भुत नृसिंह अवतारे हैं १०६॥

(सब लोगों की घबराहट)

कबित्व ।

प्रलय नगचानो नहि जानो जात घर द्वार,
कालरूपो आग उठि जगत को जारे हैं।
काके अब शरणजावें प्राण को पनाहपावें,
लोक कैसे बचै आज कमठ बलहारे हैं।
पुत्र कहां नारी कहां धन को ठिकान कहां,
कहां गाय गोरू गज तुरग सिधारे हैं।
कोलाहल चहूं ठौर कोऊ नहिं धरै धीर,
डग्गमग्ग भूमि ज्यों नृसिंह अवतारे हैं १०७॥

गुरू जी (दैत्यों से)

श्लोक ।

जागो जागो आत्मरक्षानुरागो,
भागो भागो राज को भोग त्यागो।
छोड़ो छोड़ो वंश की शूरताई,
जबलौं बाबा श्रीहरी गर्जता है १०८

छप्पै ।

भगत झुण्ड के झुण्ड विकल नहिं आवत सांसा,
फिसल पड़त नहि बनत चलत नहिं सूझत बासा।
गिरत बेगसों धाइ धाइ टूटत है दांता,
रोवत बहुविध बीर धीर सब हाय विधाता।
कितने जन घबराइ अति, प्राण छोड़ यमपुर गये,
अपर गहे हरि शरण को, त्राहि त्राहि कहते भये॥

(कितने असुर प्रहलाद से कहते हैं)

दोहा ।

कमठ विकल छोड़त धरा, विकल सकल संसार।
हे नरहरि प्रियराज सुत, अब इक शरण तुम्हार॥

राजा—(इसी अवसर में)

कुंडलिया ।

ऐसे देखे बहुत मैं बन में पशु समुदाय ।
कितने ही मृग जन्तु का मार्यों शस्त्र चलाय॥
मार्यों शस्त्र चलाय एक लखि क्यों घबराहू ।
धारहु सब हथियार शूर है मति कदराहू ॥
दानवकुल का धर्म कर्म जनि छोड़हु बीरा ।
करहु बहुरि संग्राम ग्राम पौरुष धरिधीरा १११

चौपाई ।

यदि जीवन की होइ न आशा ।
तबहू सब मिलि करहु प्रयाशा ११२
मरे सुकीरति जीते राजा ॥
उभय भांत रण उत्तम काजा ११३
ब्रह्मादिक सुर डेवढी दारी ।
करहिं लखहिं सब भृकुटि हमारी ११४
एक विपिन पशुते घबराहू ।
याते हृदय होत मम दाहू ११५

कुंडलिया ।

महा कोपते भृकुटि दोउ फरकत वदन कराल ।
करते उलटो पकड़ि के लियो जांघ में डाल ॥
लियो जांघ में डाल भूप को देव कराला ।
भूली सब करतूति असुरपति भये बेहाला ॥
धावहु सुत प्रहलाद झपटि हरिको समझाओ ।
मेटि विगत अपराध आज मम प्राण बचाओ ॥

राजा—रानी से—

यदि मेरो जीवन चहे विनती करि फुसलाय ।
मृगपति को राजी करो मम नहि कछू वसाय ॥
मम नहिं कछू बसाय कहत इमि नरहरि बीरा ।
चोखे नखसें तासु उदर कर्कटिसें चीरा ॥
बजी दुंदुभी गगन में सुर गण बरखे फूल ।
हरखे सब हरिदास गण खलहिय उपजे शूल ॥

रानी—भगवान् से

भुजङ्गप्रयात छन्द ।

तुही बाप माई गुरु मित्र भाई,
कृपा कीजिये दीजिये जीव दाना ।

नहीं तो प्रभू लीजिये मोर प्राना,
पती के गये ना कहीं है ठेकाना ११८॥

श्री नृसिंह जी—रानी से

विना दोष पाये शिशू को सताये,
कोऊ ना कुटुम्बी दया धारि धाये।
कढी पेटसों दुष्ट की दुष्टताई ,
चढी तो मुखोंपर खरी पण्डिताई ११९॥

राजा—रानी से

जो चबात दिखात सारे भुवन को,
मुख आप में ।
जासु क्रोध समान नाहीं,
प्रलय पावक ताप में ॥
तासु करमे फँसो अब मैं,
नाहि आशा जीव की ।
जाहु टरि मृगनैनि इतते,
जानि दुर्गति पीव की ॥१२०॥

रानी—

त्रिभंगी छन्द ।

मैं कहँ जाऊं शरण न पाऊं,
चहुँदिशि धाऊं नहि ठाऊं ।
केहिको गोहराऊं केहि मनध्याऊं,
प्रान बसाऊं केहि गाऊं ॥
कैसे मैं जीऊं विन निज पीऊं,
दुख पट सीऊं कबताईं ।
जो रहेउ अधारा तेहि प्रभु मारा,
सब सुख जारा हा साईं ॥१२१।

रानी—भगवान से

दोहा ।

हरि तुम में इमि चपलता, जो सब ज्ञान निधान ।
हम सब तो चंचल प्रकृति, दानव तामस खान ॥

प्र० भगवान की प्रेरणा से

दोहा ।

ऐसो साहस क्यों करे, जाते दुख फल अन्त ।
कारज ठानै सुमति सों, जो सुख भाषत सन्त ॥

माता—(पुत्र से)

श्लोक ।

धर्‍यौं पेट मे तोंहि दुद्धू पिलायों,
बड़े कष्ट औ यत्न सों मैं जिलायों ।
भये जब बड़े तो हते बाप माई,
अहो लोक में पुत्र की साधुताई ॥

प्र० माता से—

जनम ईश दियो नृप गेह में,
भजन हेत रहैं हरि नेह में ।
नहि कुपंथ कभी यह जात है,
क्यों वृथा जननी रिसियात है ॥

माता—

चिरजिओ तव कीरति नर्तिका,
रुचि समेत नचै तिहुँ लोक में ।
निज पिता वध मंगल मानि के,
तुम कृतारथ दानव शोक में ॥

प्रहलाद—

जगत दुर्लभ चिन्तन जासु को,
मरण पावत जो प्रभु गोद में ।
मुनि सराहत हैं तेहि भाग को,
जननि शोच करो जनि चित्त में ॥

जिस हिरण्य कशिपु रूपी प्रचंड पावक ते समस्त देव मंडल का आनन्द वन जल रहा था सो उस अनिवार्य्य अग्नि का बुझना अद्भुत नृसिंहावतार से सुन कर सब देवगण प्रमुदित मन अपने २ विमानों के द्वारा पृथ्वी तल में आये और असीम कोपाग्नि में जाज्वल्य मान श्री नृसिंहावतार की स्तुति करने लगे—

चौपाई ।

सुधा सिन्धु विच रुचिर अटारी ।
मणिमय दीपज्योति अतिभारी१२८
भुजग राज फण पै प्रभु राजैं ।
पद रज सेवत रमा विराजैं ॥१२९॥
लोक पाल सँग सुर गंधर्वा ।
विद्याधर किन्नर ऋषि सर्वा ॥१३०॥

यक्ष रक्ष अप्सर शुचि रूपा ।
नाग पिशाच अमित बल भूपा ॥१२९
गावत सब प्रभु गुण समुदाई ।
जय अनन्त सज्जन सुखदाई १३०
जय विश्वम्भर विश्व विभावन ।
जय निज जन रक्षक जग पावन १३१
त्रिभुवन कंटक नाशन हेतू ।
यह नृसिंह भव तारण सेतू १३२
रूप बिलक्षण अद्भुत करनी ।
भार हीन कीन्ह्यो जिन धरनी १३३
कीन्ह्यो झटिति भक्त प्रतिपाला ।
भयो विदित जग दीन दयाला १३४
कठिन नखावलि अद्भुत काया ।
जिन्ह दानव पति रक्त बहाया १३५
योगिनि गण को रुधिर पिआयो ।

त्रिभुवन मध्य विशद यश पायो १३६
लोक पाल गण मुकुट अनेका।
चूमत चरण कमल धरि टेका १३७
नारद तुम्बुर वेनु बजावत।
चारण किन्नर मिलि यश गावत १३८
सनकादिक श्रुति संग अराधैं।
योगी सिद्ध योग विधि साधैं १३९
सब जन कहें लोक प्रभु पालो।
यहि विधि सदा दुष्ट गण घालो १४०

सवैया।

दुस्सह ताप मिटावन को,
नरसिंह मयी बदरी चढि आई।
चोखे नखावलि की विजुली,
चमकीली महाखल दर्प नशाई॥
शान्ति को नीर भरे चहुं ओर
हरे मन को तृण संघ जमाई।

सेन्दुर धोइ गयो अरि नारि को,
धर्म सुकर्म को खेत बढ़ाई ॥ १४३ ॥

छप्पै ।

सकल गात अरुणार शुद्धचमकत जिमितामा।
देखि भयंकर रूप गगन भागत रिपुबामा ॥
रोवत कहि हा तात मात तजिजन धनधामा ।
स्रवत गर्भिणी गर्भगूढ नरहरि सुनि नामा ॥
प्रभु प्रताप रविउदय जानि अरिदल अँधियारा।
तत्क्षणगयो विलाय भयो सुरसुख उजियारा १४४

गंधर्व बोले—

क्या दुपहर को भानु तपत क्यामौत कृसानू।
क्या पशुपति के भाल नयन गत आगहि जानू॥
क्या प्रभुपावक राजप्रलयलखि कीन्ह तयारी।
क्या पृथिवी गतितेज वटुरि एकहि तनधारी॥
श्री नृसिंह भगवान के अद्भुत भेष प्रताप को ।
मतिगति सब हैरानिहै कहिन सकत कछुआपको

चौपाई ।

युगल कुम्भ कुचकी कठिनाई ।
अद्भुत उभय नयन चपलाई १४५

निरखि शत्रु वनिता संग भागे।
भयवश पांव परत नहिं आगे १४६
यश तुम्हार रिपु रक्त नहाये।
पहिर धवलपट जगत सुहाये १४८
भूरि शत्रु मुख कमल बनाये।
महिदेवी को सबिध चढ़ाये १४९
निज प्रकोप पावक दृढ कीन्हा।
शत्रु प्राण आहुति महं दीन्हा १५०
भूमि भारगुरु झटिति उतारा।
अरि घमंड गज माथ विदारा १५१
श्री नृसिंह तन कीरति गंगा।
मंडल चन्द्र कुमुद सित रङ्गा १५२
ता विच जो कछु नील दिखाई।
सो प्रतीत अलि गण समुदाई १५३
किम्बा अरि विधवा चित आगी।

तत्र चन्द्र मंडल अनुरागी १५४
किञ्चित नील भाग अनुमाने ।
बिरह हुताश धूम हम जाने १५५

इति चतुर्थ अङ्क

इस के अनन्तर ब्रह्मादिक समस्त देवता गण प्रभु वर नृसिंह के सम्मुख जाने की इच्छा रखते हैं परन्तु उनके क्रोध की शान्ति का उपाय नहीं देखते और शोचते हैं कि कौन देवता आगे बढकर इस कार्य को सिद्ध करे सो यह निश्चय हुआ और कहा कि हे महागणपति जी आप ही आगे बढ़िये—

द्रुतविलंबित छन्द ।

गणपती सुरसम्मति मानिके,
जब चले निज कारज ठानिके ।
नृहरि बक्त्र डरावन देखिके,
तुरत पृष्ट फिरे भय मानिके ।
तुम चलो सुरनायक सामने,
कहत इन्द्र न मैं फिरि आवने ।

गज समेत हमैं हठि घालिहैं,
कौन देव पुरी प्रति पालिहैं ।
वरुण देव चलो नहिं भीति है,
तुम जलाधिप अंग प्रतीति है ।
चलिसकूं नहिं कारण बात है,
मम जलोदर पीड़ित गात है ॥१५६॥
गति कुवेर कहो तुम आपनी,
पर अधीन क्रिया हृदि तापनी ।
दिवस राति रखावत कोस को,
डरत हैं सब नोकर दोस को ॥१५७॥
हर कहैं मम तामस बानि है,
यहि समय हरिहू रिसियान है ।
उभय दोष बढ़ै कुछ और हो,
प्रलय पावक शावक दौर हो ॥१५८॥
पवन देव चलो तुम अग्र ह्वै,
वह फिरे अहि को लखि व्यग्र ह्वै ।

अगिन भाषत मैं बिन वायु के,
जिय सकूं नहि अच्छत आपु के ॥१५९॥
चलहु भानु तुम्ही सम्हुआइके,
कह दिवाकर बात घुमाइके।
प्रथम क्यों न कह्यो दिन अन्त है,
यह गिरीवर मोर टिकन्त है ॥१६०॥
तुम निशाकर शीतल धाम हो,
चलु हरी ढिग पूरन काम हो।
कहत चन्द्र न मोर प्रकाश है,
जब तईं कछु भानु विकाश है ॥१६१॥
प्रभुपितामह बोधहु जाइके,
निगम आगम रीति सुनाइके।
वर दियो तेहि हेतु लजात हैं,
हम नहीं हरी के ढिग जात हैं ॥१६२॥

फिर ब्रह्मा जी ने कहा कि आज किसी देवता की सामर्थ्य नहीं है कि वैकुण्ठ कंठीरव भगवान् के निकट जासके और उन के प्रचण्ड क्रोध की शान्ति के विषय जिह्वा डुलावे—केवल क्षीर सिन्धु कुमारी महारानी लक्ष्मी जी अपनी अमृतमयी चेष्टा से प्रभुवर के कोप को शान्ति का उपाय कर सक्ती हैं इस निमित्त सब लोग जगन्माता महालक्ष्मी जी से प्रार्थना करो। यह सुन सकल सुरवृन्द एक मुख हो कर कोटि हानु चन्द्रमा से अधिक निर्मल गुण धारिणी सकल ताप हारिणी कमला की स्तुति करने लगे—

चौपाई।

केशव कृपा पूर्ण दृग धारिणि।
जगत मातु सबकी हित कारिणि१६३
तव पितु क्षीर सिन्धु गुण आगर।
भ्रात कल्पतरू भुवन उजागर १६४
कामधेनु है बहिनि तुम्हारी।
प्राणनाथ हरि त्रिभुवन धारी १६५
इन्द्रादिक सुर गण बहुतेरे।
विचरहिं अमित मातु तव चेरे १६६
दन्त पंक्ति वर कलिक समाना।

मुसुकुराति विकसित अनुमाना १६७
भृकुटि विलास सुचिक्कन पाती ।
लहलहात त्रिभुवन मनभाती १६८
बाहु युगल पल्लव सम धारे ।
कुसुम मनोहर नख रतनारे १६९
डोलत फिरत अमित छवि दर्शत।
दोउ थन सुफल अमी रस वरषत १७०
तव बपु कल्प लता सम माई ।
कह सक किमि शिशुमातु निकाई॥
तब लग सब विद्यागुण जागें ।
सुपथ अचार रीति अनुरागें १७२
ज्ञान विराग मधुर पटु बानी ।
भाषहिं बहु कविजन रस सानी १७३
हाव भाव मृगलोचनि केरा ।
करहिं महोत्सव गण सब डेरा १७४

जब लगि दया दृष्टि तव माई ।
थिर रह पूरब पुन्य सहाई १७५
तव लव हीन न गुण गण भावे ।
नहिं कण लहे कोससौ धावे १७६
हम सब शरण बीच तव माई ।
ठाढ़े दुखित देव समुदाई ॥१७७॥

लक्ष्मी जी प्रसन्न होकर—

दोहा ।

सुरगण निज कारज कहो, कैसे कीन पुकार ।
सो सब साधन करहुंगी, सुनि प्रिय वचन तुम्हार ॥

देवता गण बोले—

चौपाई ।

नरहरि कोप बुझावहु माई ।
जगत चराचर लेहु बचाई ॥१७८॥
शरद निशाकर आनन धारिणि ।
नील कमल लोचनि भ्रम हारिणि ॥

सर्व लोक परि पालन शीले ।
नरहरि कोप करहु अब ढीले १८१
यह सुनि रमा गोदमहँ लीन्हा ।
राजकुअर को निज सुत कीन्हा १८२
रखेहु नाथ ढिग जिन प्रतिपाला ।
जेहि लखि भयहु क्रोध सब पाला ॥

प्रह्लाद को देख कर भगवान् बोले—

श्लोक ।

बेटा सुशान्त मति धीर महान् साधू,
हा दुष्ट लोग बहु भांत तुम्हें सतायो ।
आओ निशंक भरि अंक तुम्हैं लगाऊं,
सद्भक्त गात मिलि गात जलो जुड़ाऊं ।
कहां शिशू पुष्प समान देहा,
दीन्ह्यो महाकष्ट प्रणष्ट नेहा ।
मैंने नहीं शीघ्र सहाय दीन्हा,
क्षमा करो वत्स बिलम्ब कीन्हा १८५

प्रहलाद को अंग में लगा कर आशीर्वाद देते हैं—

लम्बी आयु लहो गहो नति मती,
सन्मान विद्वान को।
दीजे गर्व न कीजिये वसु मती,
ऐश्वर्य्य को स्वप्नमें।
पालो जो सुचरित्र हों निति दलो,
जो दुष्ट हों राज में।
पूजो तुम नित इष्ट को सब घड़ी
भूपाल चूड़ा मणे ॥१८६॥

प्रहलाद—

दोहा।

निर्गुण माया तीत हो, निर्विकार जगदादि।
पूरण नित आनन्दते, भाषत सब वेदादि १८७
वीतराग मुनिवर भजहिं, तुम्है मुक्ति की आस।
इतर दुःखको धाम गनि, नहिं तहँ करैं प्रयास।

भुजङ्गप्रयात छन्द ।

जहां नित्य योगी रमैं ज्ञान साने,
जिसे पाय के ना गिरैं तत्व जाने ।
रबी चंद आगी करैं न उजेरा,
वही धाम चैतन्य है नाथ तेरा १८९
शिशू ज्यों सदा मातु में चित्त राखैं,
यथा लोक लोभी धनाशाभिलाखैं ।
तथा जे सुधी रावरो ध्यान लावैं,
नते फिर कभी गर्भ को दुःख पावैं ।

इस के अनन्तर परमानन्द से विकसित भगवान् का मुखारविन्द देख कर सकल देवताओं को साथ लिये हुये ब्रह्मा जी स्तुति करने लगे—

भुजङ्गप्रयात छन्द ।

कृपा लेश तेरो जभी रंक पावै,
तभी हो बली देवराजा कहावै ।
गिरै स्वर्ग ते शक्रहू जो रिसाहू,
महानिर्धनी ह्वै लहै दुःख दाहू ।

तुम्हैं विश्व को मैं पिता जानता हूं,
दया सिन्धु तेरी दया मांगता हूं।
चहो तो क्षणै में मरैं शत्रु संघा,
बने भक्त हेतू हरे तुम नृसिंघा।
शुची गाइ लीला तरैं सर्वलोका,
कथा के सुने ते टरैं दुःख शोका।

श्री नृसिंह जी सब देवताओं से कहते हैं प्रथम गणेश जी से

झूलना।

भूप प्रहलाद यह लगै जेहि काम में,
रखहु तुम दृष्टि नहि होय बाधो।
बिघ्न के पुञ्ज को नाशि सब भांति सों,
गौरि के पुत्र शुभ अर्थ साधो॥
सुनहु श्री शंभुजी आप मम मित्र हैं,
प्रीति यदि रखतु हो संग मेरे।
करहु कल्याण यहि भक्त को रात दिन,
सकल ऐश्वर्य्य बल रहहिं घेरे॥ १९५॥
हरहु सब दुरित रवि प्रवल निज तेज तें,
भद्र की बात नित ही दिखाओ।

इन्द्र तुम देहु अब सकल धन सम्पदा,
अरुज तन वाक मृदुता वढ़ाओ ॥
वायु तुम महा मति सुनहु दृढ़ सम्मती,
जहां तक बने मम भक्त पोखो ।
करे जो द्रोह यहि संग कोउ मोह वश,
तिसे निज शक्ति ते शीघ्र सोखो ॥११६॥
अग्नि मम भक्त को देन जो चहे दुख,
ताहि परिवार युत आप जारो ।
करे जो दुष्टव्यवहार यहि भूप सँग,
उपर तेहि वरुण निज पास डारो ॥
सुनहु विधि देव श्रुति मंत्र सों वृद्धि दो,
धर्म औ कर्म को सुदृढ राखो ।
देहु महि राज्य पर इसे बैठाइ तुम,
ऋषय संग अटल आशीश भाखो ॥११७॥

श्री वैकुण्ठ केशरी भगवान की आज्ञानुसार ब्रह्माजी ने शुक्राचार्य्यादि मुनिगणों के साथ प्रहलाद जी का राज्याभिषेक किया उसी अवसर में ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये ॥

श्लोक ।

जबलों हरी हृदय में कमला विराजें,
जबलों सरस्वति विधीमुख पद्मराजें ।

जबलौं उमा भगवती हर वाम छाजें,
प्रहलाद भूप तबलों महिमध्य भ्राजें॥
लक्ष्मीनृसिंह पद पंकज ध्यान लावें,
मंत्री समेत दृढ राज विधी बनावें।
धारें सुनीति नित नव्य प्रजा बसावें,
भोगें अकटंक धरा यश शुभ्र पावें॥

शिखरिणी।

दही घी दूधों से भरि भरि घड़े फूल फलकी,
लिये डाली दौड़ी प्रमुदित प्रजा राज गृहमें।
दिये हाथी घोड़े सुरभि सुबरन विप्र गणको,
जनम क़ैदी छोड़े हित सुमति जोड़े नृपन सों॥

नगस्वरूपिणी।

प्रसन्न आठहू दिशा चलो समीर शीतलं।
विशुद्ध नीर वाहनी नदी सुखी महीतलं।
गृहे गृहे सुमंगलं क्रिया जपादि वेद की।

नृसिंह भक्त राज में रही न बात खेद की ॥
पढ़ैं सुनैं नृसिंह को चरित्र जे सुभक्ति ते ।
बढ़ैं सुपुत्र पौत्र ते घटैं न भोग शक्ति ते ।
चहैं सोई सुसिद्ध हो लहैं अनेक कामना ।
कहैं प्रसाद राम को गहैं सुशुद्ध भावना ॥

इति श्री नृसिंहचम्पू समाप्तम् ॥